

संविधान संवाद शृंखला - 24

# इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र



शीर्षक

इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र

( संविधान संवाद शृंखला - 24 )



लेखक

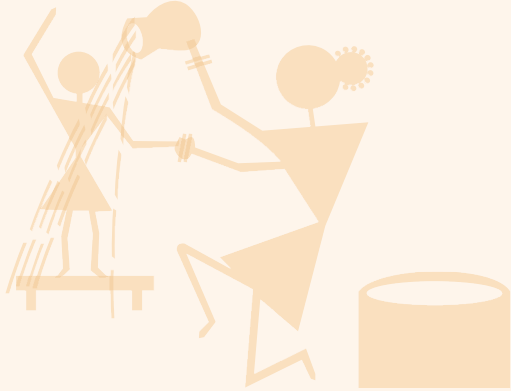
सचिन कुमार जैन



संपादन सहयोग

पूजा सिंह, राकेश कुमार मालवीय,

रंजीत अभिज्ञान, पंकज शुक्ला



संस्करण - प्रथम

वर्ष - 2023

प्रतियां - 1000

सहयोग राशि

छात्रों के लिए - ₹ 20

नागरिकों के लिए - ₹ 25

संस्थाओं के लिए - ₹ 30

मुद्रक - अमित प्रकाशन

सज्जा - अमित सक्सेना

प्रकाशक

**विकास संवाद**

ए-5, आयकर कॉलोनी, जी-3, गुलमोहर कॉलोनी,

बावड़िया कलां, भोपाल (म.प्र.) - 462039. फोन : 0755-4252789

ई-मेल : [office@vssmp.org](mailto:office@vssmp.org) / [www.vssmp.org](http://www.vssmp.org)

[www.samvidhansamvad.org](http://www.samvidhansamvad.org)

# इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र

लोकतंत्र का एक अर्थ यह भी है कि हम मतभिन्नता के बावजूद एक दूसरे के मतों का सम्मान करें। आपस में संवाद करें और एक-दूसरे को सुनने, समझने तथा महसूस करने के लिए हमेशा तैयार रहें। हमारे या हमारे बच्चों के व्यवहार में लोकतंत्र तभी आएगा जब हम अपने परिवारों में लोकतांत्रिक आचरण की परंपरा डालेंगे। घर में लोगों के आपसी रिश्तों में, बच्चों के साथ उनके व्यवहार में और काम करने वालों के साथ हमारे व्यवहार में अगर लोकतंत्र होगा तो परिवार की नई पीढ़ियों के व्यवहार में भी लोकतंत्र होगा। वास्तव में असहमति का सम्मान करना, अन्य लोगों के विचारों का सम्मान करना, कमजोरों तथा वंचितों को उचित संरक्षण देना व्यवहार में लोकतंत्र का उदाहरण है।

## इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र के होने का मतलब

लोकतंत्र और संवाद के परस्पर संबंधों के बारे में विचार करते समय हम शुरुआत कुछ प्रश्नों से कर सकते हैं:

- आप के मुताबिक व्यवस्था कैसी होनी चाहिए? न्याय करने वाली या अन्याय करने वाली?
- कोई भी निर्णय किसी एक व्यक्ति द्वारा लिया जाना चाहिए या फिर ज्यादा से ज्यादा लोगों के द्वारा मिलजुल कर निर्णय लेना चाहिए?
- हमारे यहां जो कुछ घटित होता है, उसके बारे में दूसरों को जानकारी होने में समस्या क्यों होनी चाहिए?
- समानता होना धर्म की बात है या फिर असमानता होना ही धर्म है?
- क्या होना बेहतर है आपस में प्रेम और बंधुत्व या फिर बैर-द्वेष?

हम जिस परिवार में रहते हैं, क्या उसमें सभी लोगों के मत, विचार, नजरिये, जरूरतें आदि एक जैसे हैं? ऐसा नहीं है। हमें अपने घर में ही विविधता नजर आती है। हम उस विविधता को देखते और समझते हैं। परिवार में व्यवस्था इस विविधता को देखते हुए ही बनती है।

## विविधता है या नहीं? सबके मतों में अंतर और भिन्नता है या नहीं?

हमने जो विकल्प चुने, वही लोकतंत्र है। लोकतंत्र का मतलब वोट देकर केवल किसी को अपना मालिक बनाना नहीं है। लोकतंत्र एक व्यवस्था है, जिसमें यह तय होता है कि विभिन्न मतों, सोच, विवेक का इस्तेमाल करते हुए जनता और समाज की बेहतरी के लिए निर्णय कैसे लिए जाएं?

लोकतंत्र केवल अल्पमत या बहुमत यानी संख्याओं का खेल नहीं है। लोकतंत्र का मूल आधार कुछ उसूल, मूल्य और सिद्धांत होते हैं। जब ये सभी हमारे संस्कारों में आ जाते हैं, तब लोकतंत्र स्थापित होता है।











## लोकतंत्र एक बेहतर विकल्प क्यों है?

लोकतंत्र शासन व्यवस्था के उपलब्ध तरीकों में से एक बेहतर विकल्प माना जाता है क्योंकि यह बुनियादी मानवीय मूल्यों के आधार पर पनपता है। जब भारत आज़ाद हुआ, तब भी सबसे प्रभावी विकल्प तो राजशाही की व्यवस्था के रूप में सामने था। हज़ारों साल से भारत ने वही व्यवस्था देखी-भोगी थी, लेकिन उस व्यवस्था से भारत ने यह सीखा था कि अगर सौभाग्यवश अच्छा राजा मिल गया तो प्रजा की सुनवाई होगी, नहीं तो राजा अपने भोग-विलास में लीन रहेगा और प्रजा का शोषण करता रहेगा। जनता को कभी भी अपना राजा 'चुनने' का अधिकार नहीं मिला था।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अनुभवों ने यह तो सिखा ही दिया था कि प्रजा थोड़ी या ज्यादा गुलाम ही रहती है, फिर भले किसी भारतीय राजा का शासन हो या फिर ब्रिटिश सम्राट का शासन। तब भारत ने लोकतंत्र की व्यवस्था को चुना। ऐसी व्यवस्था जिसमें सरकार लोगों को गुलाम बनाने के लिए शासन नहीं करती है, बल्कि उसे व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेदारी दी जाती है।

लोकतंत्र का मतलब होता है समाज के हित में समाज के साथ मिलकर जवाबदेही से निर्णय लेना और उन्हें लागू करना। वैसे तो देश चलाने के लिए कई तरह की व्यवस्थाओं के विकल्प मौजूद रहे हैं, लेकिन लोकतंत्र को सबसे बेहतर व्यवस्था माना गया है क्योंकि इस व्यवस्था में अलग-अलग विचारों, मतों, परिस्थितियों को ध्यान में रख कर निर्णय लिए और लागू किए जाते हैं।

यह केवल संख्याओं या बहुमत से चलने वाली व्यवस्था नहीं है। बहुमत के निर्णय को लागू करने से पहले यह देखना होता है कि व्यापक समाज के हित में क्या है? कहीं इससे अन्याय तो नहीं हो रहा है? कहीं किसी के साथ भेदभाव या शोषण तो नहीं हो रहा है?

लोकतंत्र में मूल्यों, उसूलों, मानकों का सबसे ज्यादा महत्व होता है। अगर बहुमत वाली व्यवस्था मूल्यों से भटक कर निर्णय लेने लगे, तो परिवार, समाज और देश को बहुत नुकसान पहुंचता है।

लोकतंत्र में मूल्यों, उसूलों, मानकों का सबसे ज्यादा महत्व होता है। अगर बहुमत वाली व्यवस्था मूल्यों से भटक कर निर्णय लेने लगे, तो परिवार, समाज और देश को बहुत नुकसान पहुंचता है।

यदि कोई राजनीतिक दल बड़े बहुमत से सरकार चलाने की जिम्मेदारी लेता है, तो इसका मतलब यह तो नहीं होता कि वह देश में औद्योगिकीकरण के लिए ज्यादा से ज्यादा खेती की जमीन का अधिग्रहण कर ले या जंगलों और पहाड़ों की नीलामी कर दे। यह महज राजनीतिक दृष्टिकोण नहीं है, यह नैतिक दृष्टिकोण भी है क्योंकि प्राकृतिक संपदाएं कुछ खास लोगों की ही संपत्ति नहीं होती हैं, बल्कि ये तो केवल इंसानी समाज की संपत्ति भी नहीं होती हैं। ये सभी जीवों की संपत्ति होती हैं। बहुमत की सरकार होने से राजनीतिक दलों को जिम्मेदारी, जवाबदेही और मूल्यों का त्याग कर देने का विशेष अधिकार हासिल नहीं होता है।

अगर कोई यह पूछे कि क्या वास्तव में लोकतंत्र सभी को साथ लेने की गारंटी देता है? तब यह तो नहीं ही कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था ऐसी कोई गारंटी दे सकती है, लेकिन उपलब्ध व्यवस्थाओं में यह सबसे ज्यादा गारंटी देने वाला विकल्प जरूर है। इसे समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम लोकतंत्र के कुछ बुनियादी सिद्धांतों को जानें। वही लोकतंत्र ज्यादा से ज्यादा गारंटी दे सकता है, जिसमें हर स्तर पर सहभागिता के साथ जवाबदेही होती है, जिसमें तर्क और पक्ष के साथ नैतिकता और वैधता भी होती है, जिसमें स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी का दबाव भी होता है। जिसमें विवेक, तर्क और बहस के साथ

बंधुता, न्याय, समता, गरिमा के संस्कार भी होते हैं। अगर यह समीकरण पूरा न हो, तो लोकतंत्र की इमारत की दीवारें कमजोर होती जाती हैं।

## लोकतंत्र की

व्यवस्था का विकल्प अपनाने के मूल में

यह सीख है कि डंडे, हिंसा, दबाव या अपमान से हासिल की गयी सत्ता तभी तक बनी रह पाती है, जब तक कि दूसरों को ये विकल्प लागू करने के मौके न मिल जाएं। दबाव और हिंसा की राजनीति व्यवस्था में लोगों के विश्वास को तोड़ देती हैं। लोकतंत्र में देश-समाज के लोग अपना योगदान देते हैं, अपनी जिम्मेदारी को महसूस करते हैं, उन्हें किसी दिशा में धकियाने की जरूरत नहीं पड़ती है।

लोकतंत्र में व्यक्ति निष्पक्ष नहीं होता है। उसकी अपनी भूमिका और पक्ष भी होता है। जब अन्याय हो, जब कुछ ऐसा हो रहा हो, जिससे समाज में शोषण, असमानता या वैमनस्यता फैलती हो, तब व्यक्ति को निष्पक्ष नहीं रहना चाहिए। उसे सत्य, न्याय और बंधुता का पक्ष लेना चाहिए और अन्याय, हिंसा और समाज को नुकसान पहुंचाने वाली नीतियों का प्रतिकार करना चाहिए।

लोकतंत्र का सिद्धांत व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्वतंत्रता का अधिकार देता है, तो साथ ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी तय करता है।

जब भारत आजाद हुआ, तब संविधान बनाने वालों ने लोकतंत्र की व्यवस्था को क्यों चुना? क्योंकि उन्हें पता था कि जितनी विविधता भारत में है, उतनी संभवतः दुनिया के किसी और देश में नहीं है। इस विविधता को सजाने-संवारने और सबके मिलजुल कर रहने के लिए लोकतंत्र ही सबसे बेहतर व्यवस्था मानी गयी।

हम अक्सर कहते हैं कि देश-दुनिया में विकास हो रहा है। इसका मतलब यह है कि अब ज्यादा लोग शिक्षा पा रहे हैं, दुनिया के बारे में, दूसरे विचारों के बारे में ज्यादा जान रहे हैं, अब ज्यादा बहस और नवाचार हो रहे हैं। स्वाभाविक रूप से इसका मतलब है कि इन बदलावों से लोग ज्यादा तार्किक भी हो रहे हैं। जब समाज तार्किक होता है, तब केवल लोकतांत्रिक व्यवस्था से ही समाज का संचालन और व्यवस्थापन किया जा सकता है। तब कोई अन्य पद्धति नहीं चल सकती है, क्योंकि लोग प्रश्न करते हैं, वे स्पष्टता चाहते हैं और सही-गलत का आकलन करने लगते हैं। वे चुप नहीं रहते और विश्लेषण करने लगते हैं।

जब लोकतंत्र में उसूल और मूल्य होते हैं,  
तब लोकतंत्र ज्यादा वास्तविक और स्वस्थ होता है। अगर  
समाज या सरकार कुछ गलत करते हैं, तो उन्हें सुधारने का  
काम भी उन्हीं मूल्यों के आधार पर किया जा सकता है।  
बहुमत या किसी खास मत के प्रभुत्व के दबाव से नहीं।

लोकतांत्रिक समाज ज्यादा गहरा और स्थिर होता  
है। अगर कभी देश के ऊपर कोई संकट आता है,  
तब लोकतांत्रिक समाज इससे निपटने का काम  
केवल सरकार पर नहीं छोड़ देता है, बल्कि लोग  
खुद भी समाधान खोजने में जुट जाते हैं।

लोकतंत्र की पहली और सबसे बड़ी जरूरत है संवाद। यह एक ऐसा भावनात्मक तत्व होता है, जो लोगों को जोड़ता है। संवाद से ही एक दूसरे के प्रति स्वीकार्यता पैदा होती है। जब भी लोकतंत्र को तोड़ना होता है, तब सबसे पहले संवाद को तोड़ा जाता है। कोई भी व्यक्ति जब अपना मत व्यक्त करता है, तब हिंसा से, डर से, भय से, दबाव से उसे अपना मत वापस लेने के लिए मजबूर किया जाता है।

वास्तव में संवाद के लिए एक दूसरे को स्वीकार करना बहुत जरूरी होता है। जब संवाद होता है तो रिश्ते धारणाओं या मिथ्या सूचनाओं के आधार पर नहीं बनते हैं। इसमें अपनापन जरूरी होता है। यह समझना जरूरी है कि हमारा देश भी तभी बचेगा, जब दुनिया के दूसरे देश बचेंगे, हमारा समुदाय भी तभी खुशहाल और संपन्न होगा, जब दूसरे समुदाय खुशहाल और संपन्न होंगे। हमारे बच्चे भी तभी खुश और सुरक्षित होंगे, जब दुनिया के बच्चे खुश और सुरक्षित होंगे। बंधुत्व लोकतंत्र के लिए बेहद जरूरी तत्व है।

संवाद के लिए तीन संस्कार सबसे जरूरी हैं- सुनना, समझना और महसूस करना। इस प्रश्न का खुद को उत्तर देना चाहिए कि क्या हम बिना झगड़ा किए, बिना अपमान किए, बिना किसी पूर्वाग्रह के किसी की बात, किसी का विचार सुन सकते हैं? आखिरी बार हमने ऐसा कब किया था? दूसरा तत्व है समझना। एक दूसरे के नजरिये को कैसे ही समझना, जैसे वह व्यक्त किया गया है और फिर उसे महसूस करना। महसूस करने का मतलब है कि उस विचार के पीछे की मंशा क्या है, तर्क और परिस्थितियां क्या हैं? यह सोचना कि समाज के हित में क्या है? उस विचार के नैतिक और मानवीय पहलू क्या हैं? इन तीनों चरणों के बाद भी हम उस विचार से असहमत हो सकते हैं, फिर भी उस विचार या व्यक्ति के अस्तित्व को स्वीकार करना। ये संस्कार ही समाज को लोकतांत्रिक बना सकते हैं।

यही तीन संस्कार सरकारों को भी अपनाने चाहिए। ऐसा करके ही वे लोकतांत्रिक हो सकती हैं। कोई भी नीति या नियम बनाते हुए सरकार की यह जिम्मेदारी भी है और शासन व्यवस्था का मूल्य भी कि वह निर्णय लेकर लोगों के पास न जाए। उसका निर्णय कितना ही बेहतर क्यों न हो, लेकिन लोगों से संवाद करके ही निर्णय ले। सरकार का काम नीति बनाना है और उस नीति

## भारत में लोकतंत्र और संवाद के सहसंबंध

निर्णय लेने की प्रक्रिया में अलग-अलग विचारों, रुचियों और जरूरतों को जानना जरूरी होता है। यह केवल संवाद के माध्यम से ही किया जा सकता है। संवाद से ही हम देश-दुनिया-लोगों-प्रकृति को जानते हैं, उन्हें समझते और उनके बारे में सीखते हैं और हम विचारों से ही निर्णय लेते हैं। आप यह बताइए कि क्या जीवन का कोई भी निर्णय बिना सोचे-विचारे लिया जाता है? ऐसा कौन सा निर्णय होता है, जिसे लेते समय हम उचित-अनुचित, सही-गलत, अच्छे-बुरे प्रभाव पर विचार नहीं करते हैं?

यह समझना भी बहुत जरूरी है कि विविधता को न तो नकारा जा सकता है और न ही तोड़ा और खारिज किया जा सकता है। बेहतर जीवन व्यवस्था के लिए संवाद एक बुनियादी आवश्यकता होता है। अगर परिवार का कोई सदस्य बिना कारण देर रात तक बाहर रहता है, तो उसे समझाया जाता है कि देखो, यह ठीक नहीं है। बाहर असुरक्षा रहती है। तुम्हारे देर से लौटने की वजह से मां को भी देर रात तक जागना पड़ता है। सब लोग चिंतित रहते हैं। अगर कोई जरूरी काम न हो, तो समय से वापस घर आ जाया करो। यही संवाद होगा। यही बात दूसरे तरीके से भी कही जा सकती है - तुम फालतू देर रात तक आवारागर्दी करते रहते हो। तुम्हें किसी की कोई चिंता ही नहीं है। अगर घर में रहना है तो ठीक से

रहो। पहले तरीके के संवाद से क्या होगा और दूसरे तरह के संवाद से क्या होगा? दूसरे संवाद से दूरियां ही बढ़ेंगी।

लोकतांत्रिक मूल्यों से ही बेहतर समाज और लोग बनते हैं। समाज में खुलापन, प्रेम और जिम्मेदारी का भाव आता है और किसी भी देश में लोकतंत्र तभी विकसित हो पाता है, जब उनमें संवाद की संस्कृति और संस्कार होते हैं। यह मान लेना कि देश-समाज में केवल एक ही मत होता है, एक तरह से आत्मघाती सोच है। अगर दूसरे व्यक्तियों के विचार सुने, समझे और निर्णय में शामिल नहीं किए जाएंगे तो व्यवस्था में असुरक्षा बनी रहेगी। लोग कोई जिम्मेदारी नहीं लेंगे। जब मौका लगेगा, वे व्यवस्था से अपने आप को अलग कर लेंगे।

भारत की आजादी अपने आप में संवाद की राजनीति का एक माकूल उदाहरण है। जरा सोचिए कि 562 रियासतों को भारत में मिलाने के लिए युद्ध नहीं लड़ना पड़ा क्योंकि सबसे पहले संवाद को अपनाया गया और फिर कूटनीतिक संवाद को। अगर उस वक्त परिस्थितियों के दबाव में भारत की अंतरिम सरकार ने युद्ध का विकल्प अपना लिया होता तो क्या होता? इसके दो परिणाम होते – पहला यह कि हिंसा होती और जिस भारत के मूल में अहिंसा, सत्य, करुणा के सिद्धांत हैं, राम, महावीर, बुद्ध, कबीर, मीरा और गांधी हैं, वहां पहली बार किसी भूभाग को हिंसक आक्रमण के जरिए अपने अधीन करने का दाग लगता। दूसरा यह कि जिन रियासतों का युद्ध के जरिए भारत में विलय होता, उनमें हमेशा यह भाव बना रह जाता है कि उन पर हिंसा और ताकत के जरिये नियंत्रण हासिल किया गया है। क्या तब एकता और अखंडता का भाव पनप पाता?

रियासतों के भारत में विलय की प्रक्रिया मुख्य रूप से संवाद के जरिए ही पूरी हुई। केवल हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर रियासतों के संदर्भ में कूटनीतिक प्रक्रिया की जरूरत पड़ी।

भारत का संविधान अपने आप में संवाद का एक प्रभावी उदाहरण है।

संविधान बनाने वाली सभा में हर धर्म और समुदाय के लोग थे। उसमें हिंदू थे, मुसलमान थे, पारसी थे, सिख थे, ईसाई थे, अनुसूचित जाति के लोग थे और

आदिवासी भी थे। सभा में महिलाएं भी थीं। भारत की आज़ादी के संघर्ष पर कोई भी नजरिया बनाने से पहले तत्कालीन भारत (जिसकी आबादी लगभग 40 करोड़ थी) के भीतर की चुनौतियों को समझना होगा।

ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ विंस्टन चर्चिल बार-बार कहते थे कि भारत में इतनी विविधता है कि यह अपने लिए कोई व्यवस्था बना ही नहीं सकता। वह कहते थे कि यह देश दस साल में हमसे आकर कहेगा कि वापस आइये और फिर से हम पर शासन कीजिए।

चर्चिल ने अपने वक्तव्य में कुछ आंकड़े दिए थे, 'भारत में वंचित तबकों की जनसंख्या लगभग 6 करोड़ है, इन्हें अल्पसंख्यक कह देने से मुद्दे की गंभीरता कम हो जाती है। मुस्लिम समुदाय की जनसंख्या 9 करोड़ है और रियासतों की आबादी 9.5 करोड़ है।'

इन सबकी मांग थी अपना वजूद, अपनी अस्मिता। यदि भारत के राजनीतिज्ञ संवाद नहीं करते, एक दूसरे से नरमी से पेश नहीं आते और सामंजस्य की सीमा से बाहर जाते तो भारत की स्थिति क्या होती? यह हम सबको सोचना चाहिए!

संविधान के प्रावधानों और उसके स्वरूप पर आसानी से बहस शुरू हो जाती है, लेकिन उसकी गहराई को नहीं समझा जाता। पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च (इंस्टीट्यूट फॉर पालिसी रिसर्च) ने संविधान सभा की बहस को एक नये अंदाज़ में समझा है। उनका अध्ययन बताता है कि संविधान सभा के गठन के दिन नौ दिसंबर 1946 से संविधान लागू किए जाने (26 जनवरी 1950) तक सभा की कुल 165 बैठकें हुईं। इनमें से 46 दिन संविधान पर शुरूआती चर्चा में लगे, जबकि प्रारूप पर दूसरी चर्चा में 101 दिन तक अनुच्छेदवार चर्चा की गयी। शुरूआती प्रस्तावों पर पांच दिन और संविधान के प्रारूप को लेकर तीसरी बार चर्चा में 13 दिन लगाये गये।

नवम्बर 1948 से अक्टूबर 1949 के बीच हुई अनुच्छेदवार चर्चा में 101 दिनों में से 16 दिन मूलभूत अधिकारों पर चर्चा हुई, जबकि नीति निर्देशक सिद्धांतों पर चार दिन चर्चा हुई। इसके अलावा डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा को 25



पीआरएस का अध्ययन बताता है कि संविधान सभा में बहस-चर्चाओं के दौरान लगभग 36 लाख शब्द बोले गये। इन में से दो-तिहाई शब्द अनुच्छेद पर चर्चा के दौरान तब बोले गये जब संविधान को दूसरी बार पढ़ा जा रहा था।

$$|Z| = |Z| = |Z| = |Z| = |Z| = |Z| \quad 15 \quad |N| = |N| = |N| = |N| = |N| = |N|$$

**असहमति का सम्मान**— राजबहादुर ने कहा था, 'संविधान बनाने के इस साहसिक प्रयत्न में पूर्ण रूप से एकमत होना असंभव है। कदाचित एक मत होने की संभावना केवल मूर्ख समाज में ही की जा सकती है। अतः यदि मतभेद हैं तो यह हमारी बुद्धिमत्ता का चिह्न है। इस बात का चिह्न है कि हमारा राष्ट्र विचारशील है, मननशील है। हम सबके लिए प्रत्येक विषय में तथा समस्त प्रश्नों पर एकमत हो जाना असंभव है।'

**अन्य लोगों के विचारों का सम्मान** — 26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, 'हमने एक लोकतन्त्रात्मक संविधान तैयार किया है; पर लोकतन्त्रात्मक सिद्धांतों के सफल क्रियान्वयन के लिए उन लोगों में (जो इन सिद्धांतों को क्रियान्वित करेंगे) अन्य लोगों के विचारों का सम्मान करने की तत्परता और समझौता करने तथा श्रेय देने का सामर्थ्य आवश्यक है। यह संविधान किसी बात के लिए उपबंध करे या न करे, देश का कल्याण उस रीति पर निर्भर करेगा, जिसके अनुसार देश का प्रशासन किया जाएगा। देश का कल्याण उन व्यक्तियों पर निर्भर करेगा, जो देश पर प्रशासन करेंगे। यह एक पुरानी कहावत है कि देश जैसी सरकार के योग्य होता है, वैसी ही सरकार उसे प्राप्त होती है।'

— “ —

भारत के संविधान में भारत के उच्च वर्णों और प्रभावशाली तबकों का ज्यादा प्रतिनिधित्व था, लेकिन फिर भी संविधान सभा में एक मत से यह माना गया कि देश में छुआछूत नहीं होगी। शासन व्यवस्था लोकतांत्रिक होगी। यह स्वीकार किया गया कि कुछ सामाजिक समूहों की उपेक्षा होती रही है, उनका शोषण और अन्याय होता रहा है। ऐसी व्यवस्था में बदलाव के प्रति वचनबद्धता दर्शायी गयी। भारत के संविधान ने शासन व्यवस्था के लिए जिन मानवीय-नागरिक मूल्यों का प्रतिपादन किया, उनमें से अधिकांश मूल्य भारत की व्यवस्था में अनुपस्थित थे। ऐसा विधान, संवाद से ही आकार ले पाया।

— ” —

# संविधान संवाद पुस्तिका शृंखला

- संविधान और हम
- भारतीय संविधान की विकास गाथा
- जीवन में संविधान
- भारत का संविधान – महत्वपूर्ण तथ्य और तर्क
- संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि
- संवैधानिक व्यवस्था : एक परिचय
- संविधान की रचना प्रक्रिया
- संविधान सभा में स्वतंत्रता का घोषणा पत्र
- संविधान की उद्देशिका से परिचय
- संविधान : मूल अधिकार और नीति निर्देशक तत्व
- संविधान और रियासतें
- संविधान बोध और संवैधानिक नैतिकता
- भारत के संविधान के रोचक किस्से
- भारत का राष्ट्रीय ध्वज : तिरंगे की कहानी
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और भारतीय संविधान
- गांधी का संविधान
- संविधान और आदिवासी
- स्वाधीनता, स्वतंत्रता और संविधान
- संविधान और समाजवाद तथा आर्थिक समानता
- संविधान और सांप्रदायिकता
- संविधान और चुनाव प्रणाली
- संविधान और न्यायपालिका
- संविधान और अल्पसंख्यक
- इंसानी व्यवहार में लोकतंत्र के होने का मतलब

पुस्तकें पाने के लिए संपर्क करें -

vikassamvadprakashan@gmail.com / 0755 - 4252789



## ‘संविधान संवाद’ शृंखला क्यों?

जब हम किसी विषय के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है लेकिन जब हम उसके बारे में जानना शुरू करते हैं तो फिर हर पहलू को टटोलने, जानने और समझने की आवश्यकता और ललक होती है।

भारतीय संविधान से जुड़ी तमाम जानकारियों को जानने की उत्कंठा के कारण ही ‘विकास संवाद’ ने ‘संविधान संवाद शृंखला’ आरंभ की है। इसका उद्देश्य संविधान की विकास गाथा को जानना, उसके उद्देश्य को समझना तथा तय लक्ष्यों की प्राप्ति में हम नागरिकों के कर्तव्यों के बोध की पहल करना है।

यह संवैधानिक मूल्यों के आत्मबोध से उन्हें आत्मसात करने तक की यात्रा है।



Azim Premji  
Foundation